ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 301-303
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- IV, Issues-30, YEAR- Oct.-Dec.-2023

पारिस्थितिकी तंत्र में आदिवासी चेतना

ज्ञान्ती

शोध अध्येत्री– हिन्दी विभाग, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया (बिहार) भारत

Received-18.12.2023, Revised-22.12.2023, Accepted-29.12.2023 **E-mail: gyantee@cusb.ac.in**

सारांशः ***पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना मानव, प्रकृति और दृष्टि के सभी प्राणी जगत के सम्मलित से होता है जो एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र प्रकृति और हमारी संस्कृति के मध्य संबंध मानव जीवन के स्वरूप को परिभाषित करता है। इसका स्वरूप परिवर्तनशील और मौलिक भी है। संस्कृति का सीधा संबंध मानव समाज से है जिसकी निर्मिति और विकास अर्जित संस्कारों पर निर्भर करता है। यह संस्कार पीढ़ी दर पीढ़ी एवं समाज के विभिन्न मानव समुदायों के परस्पर संपर्क से पैदा होता है। श्रृष्टि में जीवन प्रकृति के बिना संभव नहीं है।***

कुंजीभूत शब्द– पारिस्थितिकी तंत्र, संरचना, मानव जीवन, परिवर्तनशील, मौलिक, मानव समाज, विकास अर्जित, समुदायों।

प्रकृति हमारी आदि बिंब है। प्रकृति के साथ सामूहिकता, सहजीविता एवं मिलजुलकर जीना मनुष्य का स्वभाव है। जवाहर लाल नेहरू ने कहा है कि भारत विविधता में एकता वाला देश है। इसलिए भौम सदाचार एवं साकल्यता भारतीय जीवन दर्शन है। यानी प्रकृति का स्वभाव है कि प्रत्येक जीव – जंतु को आदर के साथ समान दृष्टि बनाए रखना। इसलिए प्रकृति विभिन्न परिस्थितियों में हमें सहायता एवं पारस्परिक पोषण देती है। इसके परिणाम स्वरूप हमारे पूर्वज प्रकृति की पूजा करते आ रहे हैं।आदिवासी समुदाय में प्रकृति की रक्षा करना सांस्कृतिक विरासत है। पारिस्थितिकी तंत्र में आदिवासी चेतना पर विचार करते समय हमे आदिवासी जीवन मूल्य एवं आदिवासी जीवन दर्शन पर भी विचार कर लेना अत्यंत आवश्यक है। आदिवासी जीवन दर्शन को समझे बिना पारिस्थितिकी तंत्र के प्रति विचार करना या समझना संभव नहीं है।

लेकिन प्रद्योगिकी के कारण प्रकृति धीरे–धीरे नष्ट होती जा रही है। मनुष्य अपनी शक्ति एवं अहंकार से समय को अपने वश में रखना चाहता है। जिससे पर्यावरण में इसके विपरित परिस्थिति देखने को मिलता है। आदिवासी प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व में विश्वास करता है। जिसे हम महादेव टोप्पो की कविता 'बदल डाला खुद को कुछ ऐसा' शीर्षक में लिखते हैं कि

"जीते थे कभी सखुआ पेड़ की तरह हम जड़ से उखाड़ो रोपो कहीं और जाते थे मर"

उपर्युक्त कविता हमें वर्तमान परिस्थिति को दर्शा रहा है ।आदिवासी समाज की दयनीय स्थिति को व्यक्त कर रहा है। जिस प्रकार किसी पौधे को जड़ से उखाड़ देने से वह सुख जाता है उसी प्रकार आदिवासी समाज को प्रकृति से यानी जल, जंगल, जमीन से अलग करने पर वही भी मर जाएगा। यानी उसका अस्तित्व खत्म हो जाएगा।

तेजी से बढ़ती आबादी के कारण आज पूरा विश्व पर्यावरण संकट के दौर से गुजर रहा है। इस संकट को बढ़ाने वाले अन्य मूल कारण कार्बन डाइ ऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड,सल्फर आदि का बेतहासा उत्सर्जन। इन कारणों से भारत में पर्यावरण संकट तेजी से गहराता नजर आ रहा है। आजादी के समय भारत की आबादी महज 34 करोड थी, जो विगत 70 वर्षों में 100 करोड़ बढ़कर 134 करोड़ हो गई है। वर्तमान स्थिति के अनुसार दुनिया की 2.18 फीसदी भूमि भारत के पास है, जबकि विश्व की 18 प्रतिशत आबादी भारत में रहती है, इसपर भी जन संख्या नियंत्रण की कोई कारगर होने जैसे योजोना हमारे पास है नहींद्य इस बढ़ती आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए घर, सड़क, पुल, शिक्षण संस्थान, मिल, फैक्टरी आदि के निर्माण के लिए विगत 70 वर्षों में 80 फीसदी पेड़ काटे गए पर लगाये नहीं गए, जिससे ग्लोबल वॉर्मिंग, अनावृष्टि, मौसम चक्र परिवर्तन, वायु–प्रदूषण आदि की समस्याएं उतपन्न हुआ है। स्वस्थ्य वातावरण के लिए धरती पर 33 प्रतिशत वनाच्छादित और 33 प्रतिशत जलाच्छादित क्षेत्र होना चाहिए, क्योंकि वनाच्छादित क्षेत्र ही वायुमंडल में उत्सर्जित कार्बनडाय ऑक्साइड ,कार्बन मनकसाइड,सल्फर आदि हानिकारक गैसों का अवशोषण कर ऑक्सीजन उत्सर्जित करते हैं और हवा में नमी वो शीतलता कायम रखते हैं तथा तापमान को बढ़ने से रोकते हैं। इसी प्रकार धरती के जलाच्छादित क्षेत्र नदी, पोखर, तालाब, पईन, आहर आदि वर्षा–जल को सहेज कर रखते हैं और भूगर्भीय जल–स्तर को रिचार्ज करते रहते है, जिसे "अंडर ग्राउंड वाटर रिचार्ज सिस्टम' कहते हैं।

आठ फरवरी 2021 में उतराखंड में जो आपदा आई जिसको हम सब ने देखा। ठंड के मौसम में ग्लेशियर का टूटना एक आश्चर्यजनक घटना है। क्योंकि इस मौसम में ग्लेशियर मजबूत रहता है। डी. आर. डी. ओ. (DRDO In Uttarakhand) के डिफेंस जियो–इन्फॉर्मेटिक्स रीसर्च इस्टैब्लिशमेंट के डायरेक्टर डॉ. एल.के. सिन्हा ने बताया कि उनकी टीम ने आपदा स्थल का हवाई सर्वेक्षण किया है। पहली नजर में यह ऐसा हादसा लगता है, जिसमें एक हैंगिंग ग्लैशियर अपने मेन ग्लैशियर से टूट गया है और संकरी घाटी में आ गिरा हो। उन्होंने आगे बताया कि इस टूटे हुए ग्लैशियर ने घाटी में एक झील बनाई होगी, जो बाद में फट गई और यह हादसा हो गया। सिन्हा ने कहा कि हमारे वैज्ञानिकों ने डेटा एकत्र कर लिया है और वे इसका विश्लेषण करेंगे। अगर और विवरण की जरूरत होगी तो हम और जानकारी लेने के लिए चमोली आएंगे। वाडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हिमालयन जियोलॉजी के वरिष्ठ वैज्ञानिक मेहता ने बताया कि यह बहुत असामान्य हादसा है। सर्दियों में ग्लेशियर मजबूती से जमे रहते हैं। यहां तक कि ग्लेशियर झीलों की दीवारें भी सख्ती से बंधी होती हैं। इस तरह की बाढ़ आमतौर पर हिमस्खलन या भूस्खलन की वजह से होती है लेकिन इस मामले में ऐसा नहीं है। उन्हों ने बताया कि हिमालय के ग्लेशियर दुनिया में कहीं और से ज्यादा तेजी से पीछे हट रही हैं लेकिन इसका बड़े पैमाने पर अध्ययन नहीं किया गया।

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- IV, Issues-30, YEAR- Oct.-Dec.-2023

मेहता ने कहा कि हमने ऊपरी ऋषिगंगा कैचमेंट और नंदा देवी क्षेत्र के ग्लैशियरों में विविधताओं की मैपिंग की है। इस इलाके में अधिकांश ग्लेशियर सिकुड़ते हुए पाए गए हैं। मेहता ने बीते साल एक शोध का नेतृत्व किया था, जिसमें ऊपरी ऋषिगंगा कैचमेंट इलाके के 8 ग्लैशियरों के सिकुडन की बात कही गई थी। शोध में बताया गया था कि उत्तरी नंदा देवी, चांगबांग, रमणी बैंक, बेठारटोली, त्रिशूल, दक्षिणी नंदादेवी, दक्षिणी ऋषि बैंक और रौंथी बैंक इलाके के ग्लैशियर बीते तीन दशकों में अपना 10 प्रतिशत द्रव्यमान खो चुके हैं। उपरी ऋषिगंगा जल ग्रहण क्षेत्र (कैचमेंट) वही जगह है, जहां आठ फरवरी दिन रविवार को ग्लेशियर फटा था।

स्थानीय प्रशासन की लापरवाही से शहर से लेकर गाँव तक सारे जलागार अतिक्रमण और भूमि–घोटाले के कारण विलुप्त होते चले गए, जिससे भूजल भरण प्रकिया बाधित होती चली गई, जबकि समरसेबुल मोटर से जल–दोहन तेजी से जारी है। फलतः भूगर्भीय जल–स्तर तेजी से नीचे भाग रहा हैद्यवर्तमान काल में अगर हम बिहार राज्य को देखेंगे वहाँ एक नदी है फालगु जो दाखिण बिहार में प्रबहित है और इसे अंतः सलिला नदी भी कहा जाता है द्य एक तरफ उत्तर बिहार की नदियां जब उफान पर रहते हैं तो दूसरी तरफ दक्षिण बिहार के गया की फल्गु नदी में आज भी नहीं के बराबर पानी है। एक तरफ बाढ़ के पानी से लोगों को बाहर निकालने के लिए सेना के जवानों को लगाया जाता है तो दूसरी तरफ फल्गु नदी में अपने पितरों की आत्मा को मुक्ति देने के लिए तर्पण करने वालों के लिए पानी नदी खोद कर निकालना पड़ता है।

गया की फल्गु नदी में पितृपक्ष में पितरों को तर्पण दिया जाता है। एक पुराण कथा के अनुसार भगवान पुरुषोत्तम राम अपनी पत्नी सीता के साथ यहां फल्गु नदी के तट पर अपने पितरों की मुक्ति के लिए पिंडदान के लिए आए थे।(7) इसी बीच सीता ने फल्गु नदी को शाप दिया था कि तुम्हारी धारा अब ऊपर नहीं नीचे बहेगी। तब से आज तक फल्गु नदी की धारा ऊपर नहीं बहती है। हिंदू धर्म में यह मान्यता है कि पुनपुन नदी में पिंडदान के बाद गया में पड़ने वाला पिंडदान फल्गु स्नान के बाद ही प्रारंभ होता है। वर्तमान समय में फल्गु की स्थिति ऐसी है कि कहीं–कहीं तो बालू के टीले का रूप बना हुआ है। लोग नदी में गड्ढा कर स्नान के लिए पानी निकाल रहे हैं और तर्पण कर रहे हैं।

इस का एक प्रमुख कारण ये है कि फल्गु नदी के किनारे किनारे जब भी आप गया से बुद्धगया कि रास्ते जाएंगे तो रास्ते के किनारे 80 से 100 तक ऐसे डीप बोरिंग मिलेंगे जिसका गहराई 250 से 400 मीटर तक है जिसका उपयोग पानी निकालने और कृषि कार्य के लिए किया जाता है। यही कारण है कि फल्गु नदी अब सूखा हो गया है। महादेव टोप्पो की कविता में यह दिखाई देता है। वे लिखते हैं कि–

"चट्टानों को काटकर जो शीतल जल लाते हो एक झरना एक नदी बन
एक आंदोलन बन जाता है मुक्ति का तुम इस आंदोलन के जनक कहलाते हो।"

जल, जंगल, जमीन जैसे प्रकृति के अनेक संसाधनों को उपभोक्तावादी और बाजारवादी नीति अपनाते हुए मुनाफा अपना रहा है जिससे प्रकृति में विपरीत प्रभाव देखने को मिलता है। आदिवासी समाज अपने प्राण का परवाह किए बगैर प्रकृति को बचाने की बात करता है। वे इसके लिए धरना प्रदर्शन, चिपको आंदोलन, हसदेव अरण्य आदि के माध्यम से बचाव की बात करते हैं ।

आदिवासी समाज और जंगल का संपर्क बहुत पुराना है। आदिवासियों के लिए जंगल कोई नेचुरल रिसोर्स या प्राकृतिक संसाधन नहीं है, कि जिसका इस्तेमाल अपनी स्वार्थ के लिये या फिर धन कमाने के लिए करना है। उनका जीवन और उनकी पूरी संस्कृति ही जंगल की रक्षा करना है। जंगल उनके लिए माँ–बाप सब कुछ है। अदिवासी समुदाय का जीवन जंगल पर आधारित है। अंग्रेजों के आने के पूर्व कभी किसी ने उनके इस अधिकार को छीनने की कोशिश नहीं की। हमेशा जंगल पर अदिवासियों का ही अधिकार रहा। आदिवासी समाज में सहजिविता, सहजता, सरलता और सामूहिकता जीवन का केंद्र तत्व है। उनके जीवन में लोभ प्रपंच का कोई स्थान नहीं है। वे स्वभाव से ईमानदार, निष्कपट, स्वाभिमानी होते हैं। इसका कारण प्रकृति में पलना – बढ़ना है। इसलिए वे हमेशा प्रकृति को बचाने की बात करते हैं। निर्मला पुतुल लिखती हैं कि–

"जंगल की ताजा हवा "नदियों की निर्मलता पहाड़ों का मौन गीतों की धुन मिट्टी का सोंधापन फसलों की
लहलहाहट३ आओ मिलकर बचाएं कि इस दौर में भी बचाने को बहुत कुछ भी है अब भी हमारे पास।"

प्रकृति आधारित संस्कृति और जीवन आदिवासियों की विशेषता है। आदिवासियों के जीवनदर्शन को आदिवासी ही बेहतर समझ सकता है। लेकिन बदलते परिवेश में आधुनिकीकरण के कारण आदिवासी समाज पर विपरित प्रभाव देखने को मिल रहा है जिसमे महादेव टोप्पो लिखते हैं कि–

"बस एक चीज नहीं है – हमारे पास हमारे पुरखों के कब्रगाहों से, ससनदिरी से सरना से, मानना से
उनकी आत्माओं से जुड़ी उनके खून – पसीने से सनी खेत और जमीन हमारी।"

इस कविता से यह स्पष्ट होता है कि मुख्यधारा के लोग आदिवासी समाज की सहज संस्कृति को जाने बिना अपने बस में करना चाह रहे हैं। यह आदिवासी समाज के प्रति एक अपराध जैसा है। आदिवासियों से खेत और जमीन छीन लेने से वे निष्प्राण हो जाते हैं ।

यह तो स्वयंसिद्ध है कि जंगल आज उन्हीं जगहों पर बचे हैं, जहां आदिवासी बसे हुए हैं। क्योंकि आदिवासी ही इस बात को समझते हैं कि प्राकृतिक जंगल उगाये नहीं जा सकते, खुद बनते हैं। आदिवासियों ने अपनी सामाजिक व्यवस्था के तहत कुछ बंदिशें स्वयं पर लगा रखी हैं। इन बंदिशों के तहत महुआ, आम, करंज, जामुन, केंद, नीम आदि के वृक्ष वे नहीं काटते । सूखे पेड़ को भी तीन फीट छोड़ कर ही उसे काटते हैं। वे चूल्हे जलावन के लिए हमेशा सूखे पेड़ की लकड़ियों का उपयोग करते हैं। इसलिए जहां आदिवासी हैं वहां जंगल बचा हुआ है। जहां वे नहीं, वहां जंगल का नामोनिशान मिट चुका है।

इन आदिवासियों के प्रकृति के प्रति लगाव,चेष्टा और प्रकृति सुरक्षा के प्रति जो समर्पण, त्याग का भाव हैं उसको जितना तारीफ

ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- IV, Issues-30, YEAR- Oct.-Dec.-2023

किया जाये वह कम है। वर्तमान के समय आधुनिक मानव आपने स्वार्थ के लिये कुछ भी कर गुजर ने को तत्पर है। स्वार्थ परक मानव से प्रकृति के लिए कुछ करने की आशा रखना मूर्खता ही होगा। आधुनिक मानव एक दिन घूमने, पार्टी, पिकनिक में अपना समय जाया कर सकता है लेकिन प्रकृति के लिए एक दिन श्रम दान नहीं दे सकता। यह केवल एक आदिवासी ही कर सकता है।

आदिवासियों को जंगल के सुरक्षा करते हुए कई तरह की चुनौतियाँ का सामना करना पड़ता है। जैसे जंगली जानवर से जुझना, लकड़ी तस्कर से लड़ाई, जंगल को आग से सुरक्षा करना आदि। कभी कभार वे जान को जोखिम में डालकर अपना कर्तव्य निभाते हैं। जंगल में कहीं आग लगने से अपने काम–काज छोड़ कर आग बुझाने जाना होता है। यह कार्य वे अपने मन से करते हैं इस कार्य में "आत्म संतुष्टि" के अलवा कुछ नहीं मिलता और नहीं किसी प्रकार से वे आशा रखते हैं

आदिवासियों का पुजा स्थल है जिसका नाम "सारना स्थल" है। उरांव समुदाय के लोग प्रत्येक गुरुवार को आदिवासी वेश भूषा में सुसज्जित हो कर "सारना स्थल" में पहुँच जाते हैं तथा हाथ में जल से भरा हुआ एक लोटा होता है उस पुजा स्थल में पुजा हो जाने के बाद वे पानी को पेड़ में डालते हैं। प्रत्येक गुरुवार को पेड़ में पानी डालना ये आदिवासियों द्वारा प्रकृति प्रेम को दर्शाता है। महाश्वेता देवी की "जंगल के दावेदार" उपन्यास में सारन, ससान, आखडा, गिति–ओड़ा व्यवस्था के बारे में वर्णन किए हैं। ये चार व्यवस्था मुंडा संप्रदाय के प्रमुख चार अंग माना जाता हैं। सारन व्यवस्था में मुंडा लोग गाँव के चारों सीमा पर स्थित आदिम जंगल के पुराने वृक्षों का यत्नपूर्वक संरक्षण करते थे। इस तरह वृक्षों की रक्षा करने की पद्धति को वे सारना कहते थे। मुंडा यह मानते थे कि सारना में गाँव के देवता वास करते हैं। इसलिए देवता के रूप में सारना पर पूजा एवं बलि चढ़ाते थे।

छत्तीसगढ़, उड़ीशा झारखण्ड आदि राज्य में गोत्र को पेड़ों व पशु–पक्षियों का नाम देकर पर्यावरण–संरक्षण करते हैं । छत्तीसगढ़ में बस्तर के आदिवासी अपने गोत्र का नाम पेड़ों व पशु–पक्षियों के नाम पर रखते हैं। इससे वे स्वाभाविक रूप से पर्यावरण के संरक्षक हो जाते हैं। जिस पेड़ से गोत्र जुड़ता है, उसकी पूजा करते हैं। उसे नुकसान से बचाते हैं। इससे जंगल कटने से बच जाते हैं। आदिवासियों का मानना है कि गोत्र पेड़ को नुकसान पहुँचाने का मतलब कुलदेवता को नाराज करना है। आदिवासियों में बेलसरिया गोत्र से बेल पेड़, कश्यप से कसही व कछुआ, बड़सरिया से बरगद यानी वट पेड़ जुड़े हुए हैं। इतना ही नहीं, उनके गोत्र का वन्य–जीवों से भी नाज है। उनके बीच बासुकी से नाग, माकड़ी से बंदर, बघेल से बाघ, गोटा से बकरा, मंजूरबसिया से मोर, भेडिया से भेंडिया, कोलिहा से सियार का नाम जुड़ा है। आदिवासी अपने गोत्रज पेड़ को काटना महापाप मानते हैं। सर्व आदिवासी समाज के जिला कार्यकारी अध्यक्ष दशरथ राम कश्यप बताते हैं कि आदिवासी समाज अपने गोत्रज पेड–पौधों को काटना तो दूर, गोत्रज जीव–जंतुओं को पालते तक नहीं। आदिवासी समाज ही नहीं, हर समाज में कुलदेव और उनके संकेतक गोत्रज हैं और उन्हें भी आदिवासियों ये सीख लेना चाहिए और पर्यावरण सुरक्षा में अपने योगदान देना चाहिए। पर्यावरण है तो जीवन है।

आदिवासी समुदाय प्रकृति की पुजारी नहीं बल्कि प्रकृति के साथी है एवं उनके जीवन और संस्कृति मूल्यों में भी और वर्तमान परिवेश में भी पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा निहित है। पारिस्थितिकी तंत्र के साथ खिलवाड़ करना विश्व संकट के घेरे में नजर आएगा जैसा कि पिछले बीते हुए समय में कोविड –19 देखने को मिला है। सभ्य समाज द्वारा रचित विकास का यह मॉडल पारिस्थितिकी तंत्र के खिलाफ है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जंगल पहाड़ का पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा प्रकाशन नई दिल्ली।
2. नालंदा बिशल शब्द सागर–सं नवल जी।
3. भारतीय आदिवासी समाज दृए–वाय.कांडेकर।
4. आलोचना–अप्रेल–जून 1984.
5. सामयिक परिवेश दृवर्षः9–अंकः13.
6. रवीद्र शुक्ला –नबभरत टाइमः08–feb-2021 6:53 PM
7. रवीद्र शुक्ला –नबभरत टाइमः08–feb-2021 6:53 PM
8. एम.पत्रिका.ओआरजी 15 SEPT 2019
9. धुणी तोपे तीर–हरीराम मीणा।
10. महेस्वता देवी"जंगल के दावेदार, प्राधाकृष्ण प्रकाशन।
11. हरित वसुंधरा–ISSN–2456–3250,पर्यावण समाचार।

*****